वाजिद अली शाह की इल्मी योग्यता और सरपरस्ती

तिमसाल मसूद

अवध के आख़िरी बादशाह वाजिद अली शाह एक उच्च श्रेणी के साहित्यकार, कवि, अनुवादक, संगीतकार होने के साथ नृत्य और ड्रामा के भी फ़नकार थे। इस के साथ ही वह साहित्य और कला के सच्चे सरपरस्त भी थे यानी अवध की सल्तनत के पतन के बाद मौत होने तक वह कलाकारों को वज़ीफ़े देते रहे। वाजिद अली शाह के इन पहलुओं को प्रमाणित और विश्वसनीय स्रोतों के साथ मसूद हसन रिज़वी अदीब ने अपनी उर्दू पुस्तक *सुल्ताने आलम वाजिद अली शाह* (1977) में पेश किया था। यह लेख इसी पुस्तक के कुछ हिस्सों की मदद से लिखा गया है।

अवध के आख़िरी बादशाह वाजिद अली शाह की प्राथमिक शिक्षा के बारे में ज़्यादा कुछ नहीं मिलता। स्वयं वाजिद अली शाह का बयान है कि जब उम्र के पाँच बरस गुज़रे तो

बाप ने मक़तब के हवाले कर दिया। वाजिद अली शाह की इल्मी योग्यता के सबसे ज़्यादा विश्वसनीय सबूत ख़ुद उन की अपनी लिखी हुई तहरीरें हैं। बादशाह की ख़िदमत में जो अर्ज़ियाँ पेश होती थीं और बादशाह की तारीफ़ में जो फ़ारसी क़सीदे कहे जाते थे, उनकी भाषा इतनी जटिल होती थी कि आम लोग तो उन को समझ भी नहीं सकते लेकिन बादशाह उन पर मुनासिब आदेश देते, उनसे आनंद उठाते, उनकी दाद देते और इनाम अता फ़रमाते थे। इस से उनकी इल्मी योग्यता का सुराग़ मिलता है।

बादशाह की फ़ारसी की मिसाल के लिए उस जवाब को देखा जा सकता है जो उन्होंने ज़हीर बिलग्रामी को कलकत्ता से लिखा था। शाही दारुल-इंशा के मीर मुंशी ज़हीरउद्दीन ज़हीर बिलग्रामी ने माज़ूल बादशाह की ख़िदमत में एक फ़ारसी कविता और एक अर्ज़ी मटियाबुर्ज भेजी थी, जिसमें बादशाह की जीवनी लिखने के लिए बादशाह की किताबें और रोज़नामचा और उनकी ज़िंदगी के हालात माँगे गए थे। बादशाह उस वक़्त फ़ोर्ट विलियम में नज़रबंद थे और जिस्मानी और रूहानी तकलीफ़ में ग्रस्त थे। उन्होंने क्षमायाचना के साथ तक़रीबन तीन हज़ार रुपये ज़हीर बिलग्रामी को नक़द इनायत फ़रमाया और साथ ही ज़हीर बिलग्रामी की पचास रुपये माहवार तनख़्वाह भी मुक़र्रर कर दी। इसके अलावा वाजिद अली शाह के फ़ारसी ज्ञान की मिसाल के लिए उनकी *ज़हीरुल इंशा* और *नसाए अख़्तरी* किताबें देखी जा सकती हैं। बादशाह की बाज़ किताबें उनकी अरबीदानी का भी सबूत पेश करती हैं जैसे – *हिदायतुस्सुलतान* और *इरशादुस्सुलतान*।

बादशाह ने फ़ारसी और उर्दू शायरी का अध्ययन किया था। अपनी एक किताब में उन्होंने भांडों के लिए उम्दा नक़लें लिखी हैं उन में एक क़िस्सा मुशायरे का है, जिसमें फ़ारसी और उर्दू के 26-26 शायर आते हैं और अपना एक-एक शेर सुनाते हैं। वाजिद अली शाह ने उन के लिए 52 ग़ज़लों के शेर लिखे हैं, और अपने लिए यह शेर लिखा है :

एक हसरत तूर पर भी बहरे मूसा रह गई
ऐसा कुछ देखा कि आँखों को तमन्ना रह गई

बादशाह को अवध की देहाती बोलियों पर काफ़ी उबूर था। उनके गीत ज़्यादातर उन्हीं बोलियों में हैं। उन्होंने ख़्याल रागनी भटयार की मिसाल में अपने गीत *बनी* नामक पुस्तक में पेश किए हैं :

आज मोरे घर काज मंदीला बाजे माई री
गलियों गलियों हुन बरसत है धुलकत है नग्गारा
अख़्तर प्यारा मुल्क अवध पर राजे माई री

एक गीत की आस्ताई है :

14 Timsal Masood_Layout 1 22-02-2024 15:58 Page 385

इतना जाये कहो हमरी ओर से
हर सूँ कर जोर जोर बेग दरस दीजिए
बिरहन ब्याकुल तरपत
सहू न जात बिछरन को दुख भारी

एक मौक़े पर रामचेरा कन्हैया से पूछता है :

राजन के राज अधिराज महाराज शिवप्रधान छत्रपती बताओ तो क्या हुआ
बसे न देहूँ तुहार पुरवा जो मोर बस्ती उजाड़ हुई

वाजिद अली शाह को लेखन और उसके संकलन का स्वाभाविक शौक़ था। उन्होंने दो दीवान और तीन मसनवियाँ 18 बरस की उम्र में ही लिख ली थीं और तमाम उम्र लेखन और संकलन जारी रखा। यहाँ तक कि उर्दू-फ़ारसी, गद्य-पद्य में उनकी किताबों की संख्या सौ से ऊपर पहुँच गई। कौन कल्पना कर सकता है कि इस बदनाम बादशाह को किताबें लिखने की फ़ुर्सत मिली होगी। फिर किताबें भी दो चार नहीं दस बारह नहीं, सौ से ज़्यादा। सिर्फ़ मसूद हसन रिज़वी अदीब की तन्हा तलाश के नतीजे में वाजिद अली शाह की 60 से ऊपर किताबें दस्तयाब हो गई थीं जो आज तक उनके संग्रह में मौजूद हैं। कई लेखकों ने बादशाह के लेखन और संकलन का ज़िक्र किया है। अब्दुल हलीम 'शरर' *हुज़्ने अख़्तर* के मुक़दमे में बादशाह की फ़ारसी तहरीरों और नज़्मों का ज़िक्र करने के बाद लिखते हैं :

हज़रत जाने आलम ने सैकड़ों मरसिए और सलाम कह डाले और इतनी किताबें नज़्म और नस्र में लिख दीं कि उन का शुमार भी शायद आज किसी को मालूम नहीं होगा।

राजा दुर्गा प्रसाद संदेलवी लिखते हैं : (फ़ारसी से तर्जुमा)

इन दिनों अगरचे सल्तनत के ख़ात्मे, आमदनी की क़िल्लत और ख़र्चों की कसरत से बादशाह तरह-तरह की फ़िक्रों से दो-चार रहते हैं, लेकिन इंतिहाई शौक़े सुख़न की वजह से अपना वक़्ते अज़ीज़ बेश्तर इल्मी तज़किरों में गुज़ारते हैं और अपनी ताज़ा-ब-ताज़ा किताबों से हाशिया नशीनों को बे-इंतिहा फ़ैज़ पहुँचाते हैं (बोस्ताने अवध, 1892)।

हिंदुस्तानी ज़बान के मशहूर फ़्रांसीसी आलिम और शिक्षक गार्सियाँ द तासी ने बादशाह की माज़ूली के चंद महीने बाद 4 दिसंबर 1856 को अपने सालाना व्याख्यान में कहा :

मुझको वाजिद अली शाह से इस बिना पर दिलचस्पी है कि वह एक अच्छे लेखक और अच्छे शायर हैं। उनका तख़ल्लुस 'अख़्तर' है और वह हिंदुस्तानी शायरी के आसमान

14 Timsal Masood_Layout 1 22-02-2024 15:58 Page 386

> पर चंद रौशन सितारों में से एक हैं। वह अपने ख़ानदान की शाहाना रिवायतों के हामिल और उनके लायक़ वारिस हैं। उनका सारा ख़ानदान हिंदुस्तानी साहित्य का मोहसिन था और उसके अक्सर अफ़राद ख़ुद भी अदबी ज़ौक़ रखते थे।

वाजिद अली शाह के लेखन से साहित्य के कामों में उनकी व्यस्तता का पता चलता है। वह अपनी एक बेगम मुम्ताज़ जहाँ नवाब इकलील महल को 1858 में लिखे अपने एक ख़त में लिखते हैं :

> अपनी कविताओं को जमा कर रहा हूँ। इसलिए मुझे फ़ुर्सत नहीं है। मगर जवाब तुम्हारे मुहब्बत-नामे का ज़ुलफ़िक़ारुद्दौला से लिखवा दिया है, ख़ुद सुन लिया है। अगर कविताओं के जमा होने तक मैं अपने हाथ से न लिखूँ तो कुछ और ख़्याल न करना, कम मुहब्बती तसव्वुर न करना। इंशाअल्लाह जब इससे फ़राग़त होगी बदस्तूर नज़्म ओ नस्र लिखूँगा।[1]

एक दूसरी जगह मलका ग़ज़ाला को एक ख़त में लिखते हैं :

> मैं अपनी कविताओं को जमा करने में मसरूफ़ हूँ। लिहाज़ा जवाब ज़ुलफ़िक़ारुद्दौला से लिखवा कर ख़ुद सुन कर भिजवा दिया। कम मुहब्बती की वजह से यह बात नहीं है। इंशाअल्लाह बाद फ़राग़त अपने हाथ से लिख कर तुम्हारे हस्बे दिलख़्वाह भिजवाऊँगा। ख़ातिर जमा रखो (तारीख़े ग़ज़ाला)।

वाजिद अली शाह ने अपनी किताब *बनी* में एक जगह अपनी 46 किताबों के नाम बताने के बाद लिखा है :

> ये सब फ़क़ीर के कुतुबख़ाने में मौजूद हैं और जो किताबें सल्तनत के ख़ात्मे में बर्बाद हुईं वे इसमें शामिल नहीं हैं।

इससे मालूम होता है कि जो किताबें वह उस वक़्त तक लिख चुके थे उनकी संख्या 46 से ज़्यादा थी। यह बादशाह की बताई हुई उनकी किताबों की फ़ेहरिस्त है :

(1) अख़्तर मिलक (2) अफ़साना ए इश्क़ (3) इरशादे ख़ाक़ानी (4) ईमान (5) बहरुलहिदायत (6) बहरे उल्फ़त (7) बहरे मुख़्तलिफ़ (8) बनी (9) तारीख़े मुज़्हब (10) तारीख़े मुम्ताज़ (11) तारीख़े ख़ास (12) तारीख़े फ़िराक़ (13) तारीख़े मशग़ाला (14) तारीख़े ग़ज़ाला (15) तारीख़े नवाज़ (16) तारीख़े जमशेदी (17) तारीख़े दहर (18) तजल्लिए इश्क़

---

[1] तारीख़े मुमताज़, https://www.rekhta.org/ebooks/detail/tareekh-e-mumtaz-ebooks.

14 Timsal Masood_Layout 1 22-02-2024 15:58 Page 387

(19) जौहरे उरूज़ (20) हुज़्ने अख़्तर (21) दरयाए इश्क़ (22) दस्तूरे वाजिदी (23) दफ़्तरे हुमायूँ (24) दीवाने मुबारक (25) दफ़्तरे परेशान (26) दुलहन (27) सुख़ने अशरफ़ (28) शुयुए फ़ैज़ (29) सहीफ़ए सुल्तानी (30) सौतुलमुबारक (31) इश्क़नामा (32) क़मरे मज़मून (33) कुल्लियाते अख़तरी (34) कुल्लियाते सोम (35) गुलदस्तए आशिक़ाँ (36) मुसव्विदाते हरसिया (37) माही नामा (38) मुरक़्क़ए फ़रख़ (39) मुबाहिसए बैनुलनफ़्सुलअक़्ल (40) नाजो (41) नज़्मे नामवर (42) नसाए अख़तरी (43) हैबते हैदरी (44) लुग़ते हफ़्त ज़बान (45) पाँच चार किताबें मरसियों की (46) मजमूए वाजिदिया।

वाजिद अली शाह की जो हक़ीक़त के ख़िलाफ़ छवि आम तौर पर बन गई है उससे यह संदेह पैदा हो सकता है कि अपने फ़ायदे के लिए दूसरों ने किताबें लिख कर बादशाह को नज़र कर दी होंगी और ये किताबें वाजिद अली शाह ने अपने नाम से छपवा लीं, लेकिन यह संदेह बिल्कुल बे-बुनियाद है। उनकी जिस किताब के भी चंद पृष्ठ पढ़ लिए जाएँ वह ख़ुद बता देंगे कि इसका लेखक कौन है। वाजिद अली शाह जिस बेतकल्लुफ़ अंदाज़ में अपना ज़िक्र करते हैं और जिस सफ़ाई और बेबाकी से अपने हर तरह के निजी हालात बयान कर देते हैं वह कोई दूसरा नहीं कर सकता। मौलाना 'शरर' *हुज़्ने अख़्तर* के मुक़दमे में लिखते हैं :

> वाजिद अली शाह का कलाम बुरा भला जो कुछ है ख़ास उनका है। उसमें एक शब्द भी किसी और का नहीं। बादशाहों के यहाँ आम तौर पर बड़े-बड़े शायर और लेखक मुलाज़िम हुआ करते हैं और उन्हीं का लेखन बादशाहों के नाम से प्रकाशित भी हुआ करता है। मगर इस के विपरीत वाजिद अली शाह के लेखन में जो कुछ भी है उनका है और किसी का एक शब्द भी उसमें शामिल नहीं है।

बादशाह की शायरी और शायरों की क़द्रदानी

वाजिद अली शाह की तबियत में मौज़ूनियत और शायरी का शौक़ फ़ितरी था। बादशाह अक्सर फ़रमाया करते थे कि लखनऊ का नाम अख़्तरनगर भी है और इसी मुनासिबत से मैंने चाहा कि अपना तख़ल्लुस अख़्तर रखूँ। मगर जब मालूम हुआ कि अख़्तर किसी दूसरे का तख़ल्लुस है तो बादशाह ने उनसे तख़ल्लुस मोल ले लिया। मालिकुद्दौला 'सौलत' का यह शेर देखिए जिसमें अख़्तरनगर आया है :

> ये दिल में मानी है हम ने मन्नत वतन में किस को दिखाएँ सूरत
> बग़ैर शाहे अवध के 'सौलत' कभी न अख़्तरनगर को चलिए

वाजिद अली शाह को शायरी से जो ग़ैरमामूली दिलचस्पी थी और आख़िरी उम्र तक यह दिलचस्पी क़ायम रही, ख़ुद फ़रमाते हैं :

14 Timsal Masood_Layout 1 22-02-2024 15:58 Page 388

शेर गोई में मज़ा ऐसा मिला है 'अख़्तर'
मरते-मरते न कभी शौक़े ग़ज़ल जाएगा

ज़ईफ़ी में भी लिपटी है शायरी हम से
न छूटेगी कभी अख़्तर क़लम से मश्क़े तिफ़्लाना

वह लड़कपन में भी कुछ न कुछ नज़्म करते रहे होंगे लेकिन 17 बरस की उम्र में उन्होंने शायरी बाक़ायदा शुरू की और एक साल में दो दीवान और तीन मसनवियाँ कह ली थीं : *अफ़्सानए इश्क़*, *दरयाए इश्क़*, और *बहरे उल्फ़त*। बादशाह अपनी बादशाही के ज़माने में भी गद्य के साथ-साथ नज़्में भी कहते और उनका संकलन करते रहे। ज़मानए शाही का अधिकतर लेखन बादशाह के कलकत्ता चले जाने के बाद ग़दर में लुट गया। बादशाह अपनी जीवनी और रोज़नामचा भी लिखा करते थे। यह दोनों चीज़ें भी ग़दर में नष्ट हो गईं। बादशाह की शायरी का ज़िक्र बहुतों ने किया है। उनके बाज़ समकालीन और कुछ बाद के लोगों के बयान यहाँ पेश किए जा रहे हैं। 'सफ़ीर' लखनवी बादशाह की माज़ूली के बहुत दिन बाद अपनी मसनवी *गुलशने इश्क़* में कहते हैं :

क्या करूँ उनकी शायरी का बयाँ
कहते हैं अपने वक़्त के सहबाँ
जितने अहले ज़बाँ हैं मानते हैं
बल्कि उस्ताद अपना जानते हैं
बादशाहे ज़मन वह हज़रत हैं
शाहे मुल्के सुख़न वह हज़रत हैं
चश्मे बद्दूर क्या तबीयत है
सीना गंजीनए फ़साहत है

'सफ़ीर' बिलग़रामी *बोस्ताने ख़याल* के अनुवाद की प्रस्तावना में लिखते हैं :

शायरी की तरफ़ जो तबीयत आई उसकी शान वह बढ़ाई कि उस्तादों की शान घट गई। तीन मसनवियाँ चंद दीवान हज़रत के यादगारे ज़माना हैं।

लखनऊ के एक उस्ताद शायर वज़ीर अली 'सबा' अपनी मसनवी *सैदिय्या* में कहते हैं :

मुनव्वर है इस से जहाने सुख़न
कि है अख़्तर आसमाने सुख़न

'सग़ीर' लखनवी ने मसनवी *आईनए अख़्तर* 1859 में लिखी जिसमें वह बादशाह की

14 Timsal Masood_Layout 1 22-02-2024 15:58 Page 389

साहित्यिक रुचि के बारे में लिखते हैं :

फ़राहम थे सब कामिलाने जहाँ
तबीबो सुख़नसंजो रामिशे गरां
मगर शह की तकमील का था ये हाल
कि लेते थे इस्लाह अहले कमाल
कई शह ने दीवान फ़रमाए थे
मै चंद तस्नीफ़ छपवाए थे
ज़बाने फ़साहत बयाँ का कलाम
बहुत था पसंदीदए ख़ासो आम
वो दीवान कह कर कही मसनवी
कही दूसरी तीसरी मसनवी
बहुत ख़ुशबयानी से मोती पिरोए
कि वारफ़्ता दिल जिसको सुन-सुन के होए

राजा दुर्गा प्रसाद संदेलवी बादशाह की शायरी, शायरों की क़द्रदानी और उनके समय में लखनऊ में शायरों के जमावड़े का ज़िक्र इस तरह करते हैं : (फ़ारसी से तर्जुमा)

> हज़रत सुलताने आलम वाजिद अली शाह की सल्तनत में शायरों और सुख़नवरों ने राजधानी में जमा हो कर हज़रत की रुतबा शनासी और क़दरदानी से आर्ज़ू का दामन मुराद के फूलों से भर लिया और अलक़ाब और ख़िताब, ज़र और जवाहर से कल्पना से बढ़ कर बहरामंद हुए।

अब्दुल हलीम 'शरर' का चश्मदीद बयान है :

> मैंने अपनी आँखों से देखा कि अपने सुल्तानख़ाने से बूचे पर सवार हो कर इमामबाड़ा सिब्तैनाबाद की मजलिस में शरीक होने के लिए रवाना हुए और जो मरसिया और सलाम वहाँ पढ़ेंगे उन्हें रास्ते में तैयार कर रहे हैं। दो कातिब साथ-साथ चल रहे हैं। एक को मरसिया लिखवाते हैं और दूसरे को सलाम के शेर। इमामबाड़े तक पहुँचते-पहुँचते पूरा सलाम और मरसिया लिखवा दिया।

शायरी के फ़न में वाजिद अली शाह के उस्ताद फ़तहुद्दौला मिर्ज़ा मुहम्मद रज़ा 'बर्क़' थे। बादशाह ने अपनी एक मसनवी *हुज़्ने अख़्तर* में अपने उस्ताद की वफ़ात पर अफ़सोस किया है :

ज़न ओ मर्द से कम हुए सात लोग
मुझे फ़तहे दौला का अब भी है सोग

ख़ुदा बख़्शे उस को अजब मर्द था
फ़ने शायरी में तो वह फ़र्द था
यह बंदा है शागिर्द उस माह का
बँधा है धुआँ दिल में एक आह का

बादशाह के दामन से वाबस्ता शायर के अलावा दूसरे शायर भी शाही इनाम से सरफ़राज़ होते रहते थे। उनमें मिर्ज़ा 'ग़ालिब' भी थे। 'ग़ालिब' एक ख़त में यूसुफ़ मिर्ज़ा को लिखते हैं :

> मैं 14 पार्चे का ख़िलअत एक बार और मलबूसे ख़ास व रूमाल व दो शाला एक बार पेशगाह हज़रत सुलताने आलम से पा चुका हूँ। चुनाँचे क़सीदा लिख कर और जैसा कि मेरा दस्तूर है काग़ज़ को बनवा कर हज़रत पीर ओ मुरशिद की ख़िदमत में भेज दिया है यक़ीन है कि हज़रत ने वहाँ भेज दिया होगा और मैं तुमको भी लिख चुका हूँ कि मैंने क़सीदा लखनऊ को भेज दिया है।

अपने एक और ख़त में 'ग़ालिब' लिखते हैं :

> वाजिद अली शाह बादशाहे अवध की सरकार से ब-सिलए मदह गुस्तरी पाँच सौ रुपये साल मुक़र्रर हुए। वह भी दो बरस से ज़्यादा न जीए। यानी अगरचे अब भी जीते हैं मगर सल्तनत जाती रही।

कई हवालों से मालूम हुआ है कि वाजिद अली शाह अपने महल में मुशायरे भी करते थे। उन में ख़ुद शरीक होते थे और शायरों की ख़ातिर-तवाज़ो ख़ुद करते थे। अवध के रेज़िडेंट कर्नल सलीमन ने गवर्नर जनरल लार्ड डलहौज़ी को अपने 6 सितंबर, 1849 के ख़त में लिखा :

> तक़रीबन दस दिन हुए लखनऊ के सब शायर बादशाह का कलाम सुनने के लिए महल में जमा हुए थे। वह सब उनका कलाम सुनने और अपना कलाम सुनाने के लिए 9 बजे रात से 3 बजे सुबह तक बादशाह के साथ बैठे रहे।

उर्दू के एक उस्ताद शायर नवाब सय्यद मुहम्मद ख़ाँ 'रिंद' के दीवान में एक ग़ज़ल का शीर्षक है 'ग़ज़ल मुशायर-ए वाजिद अली शाह बादशाह'। इस ग़ज़ल के चंद शेर यहाँ नक़ल किए जा रहे हैं :

वह जीते जी हुए ईज़ा से नज़ा की आगाह
जो सदमे तेरे शबे इंतिज़ार देख चुके
जुनूँ ने ख़ूब दिखाई बहारे जेब ओ किनार
हवा में उड़ते हुए तार-तार देख चुके

14 Timsal Masood_Layout 1 22-02-2024 15:58 Page 391

न पहुँचा एक भी ज़र्रा तुम्हारे दामन तक
उड़ा के ख़ाक भी हम ख़ाकसार देख चुके
भला वो ख़ाक करें क़स्द बज़्मे हस्ती का
जो लोग राहते कुंजे मज़ार देख चुके
क़ुसूरे बख़्त है फिर जायें अब अगर महरूम
दरे करीम तो उम्मीदवार देख चुके
सिवाए ज़ाते ख़ुदा सब के वास्ते है फ़ना
सबाते हस्तिए नापायदार देख चुके
इलाही तूने शरफ़ जिस को आसमां पे दिया
वह सरज़मीन भी ये ख़ाकसार देख चुके
फ़क़ीर भी मुतरस्सिद निगाहे लुत्फ़ का है
इधर भी रिंद मेरा शहरयार देख चुके

इसी तरह शेख़ इम्दाद अली 'यावर' की एक ग़ज़ल भी शाही मुशायरे में पढ़ी गई थी जिस के कुछ शेर हैं :

किसे देखें सिवाए जाने आलम
कि आलम है फ़िदाए जाने आलम
बहुत नाज़ाँ है गुल जामे प अपने
सुँघा दीजिए क़बाए जाने आलम
चराग़े आफ़ताब ओ शमए मह में
कहाँ नूर ओ ज़ियाए जाने आलम
मिटा दूँ ऐ मुहव्वसे रंगे इकसीर
दिखा दूँ ख़ाके पाए जाने आलम
उन्हें परवाह है क्या ज़िल्ले हुमा की
जो हैं ज़ेरे लवाए जाने आलम
नहीं झुकते किसी अहले दुवल से
वह सरकश हैं गदाए जाने आलम
सुख़न फ़हम ओ सुख़नदान ओ सुख़न रस
नहीं कोई सिवाए जाने आलम
अदू से भी नहीं दिल में कदूरत
ज़हे सिद्क़ ओ सफ़ाए जाने आलम
टपकती है मिरी बातों से उल्फ़त
यह है जोशे विलाए जाने आलम
रक़ाबत कीजिए किस किस से 'यावर'
ज़माना है फ़िदाए जाने आलम

14 Timsal Masood_Layout 1 22-02-2024 15:58 Page 392

जब तक वाजिद अली शाह बादशाह रहे लखनऊ में शायरों का जमघट रहा मगर जब वह माज़ूल हो कर कलकत्ता चले गए तो यह सभाएँ भी बिखर गईं और शेर-ओ-सुख़न की महफ़िलें सूनी हो गईं। 'शहीद' लखनवी जो शाही मुशायरों में शरीक हो कर वहाँ की रौनक़ और शान देख चुके थे, किस हसरत से कहते हैं :

लखनऊ बेकस हुआ हज़रत जो लंदन को गए
हम यहाँ नालाँ हैं वो फ़रयादे दुश्मन को गए
फ़स्ले गुल कब आएगी कब होंगे आख़िर नग़्मा संज
एक मुद्दत हो गई याराने गुलशन को गए

ख़ुद वाजिद अली शाह कहते हैं :

जब से क़ैदी हुआ कलकत्ते में आकर 'अख़्तर'
शायरे हिंद बहुत लुत्फ़े सुख़न भूल गए

मगर यह हालत बहुत दिनों तक न रहने पाई क्यूँकि वाजिद अली शाह शायरों के बड़े क़द्रदान थे इसलिए लखनऊ में सल्तनत के ख़ात्मे के बाद बीसियों शायर उन के दामने दौलत से वाबस्ता हो कर मटियाबुर्ज़ पहुँच गए। मटियाबुर्ज़ में मौजूद इन शायरों के अलावा बहुत से दूसरे शायर भी इनाम पाते रहते थे। मुंशी अमीर-उल्लाह 'तस्लीम' शायर भी थे और ख़ुशनवीस यानी सुलेखक भी। उन्होंने सुंदर अक्षरों से सजा कर एक कविता में याचना लिख कर बादशाह की ख़िदमत में मटियाबुर्ज़ भेजी। इसके बदले में इनाम के रूप में वाजिद अली शाह ने उनका 30 रुपये माहवार वज़ीफ़ा तय कर दिया।

मौलवी मुहम्मद बख़्श 'शहीद' 'नासिख़' के शागिर्द थे और ख़ुद उस्तादी का मरतबा रखते थे। उनके शेर से मालूम होता है कि बादशाह की सरकार से उनका भी कुछ वज़ीफ़ा तय हो गया था :

तसददुक़े ख़्वारीए सुलताने आलम का असर यह है
सुख़नदानों में शोहरत है 'शहीद' अकमल है कामिल है

फिर इन्हीं 'शहीद' के शागिर्द इमदाद अली 'यावर' ने बादशाह की शान में चंद शेर कह कर भेजे, बादशाह ने उनका भी 15 रुपये माहवार वज़ीफ़ा मुक़र्रर कर दिया। मेरठ के प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित शायर सय्यद अहमद हसन 'फ़ुरक़ानी' ने एक फ़ारसी क़सीदा बादशाह की तारीफ़ में कह कर क़द्दे आदम साइज़ के काग़ज़ पर बहुत ही सुंदर अक्षरों में लिखवाकर और सोने के काम से उसको अलंकृत कर के जनवरी 1860 में बादशाह की ख़िदमत में कलकत्ता भेजा। बादशाह ने एक क़ीमती ख़िलत भिजवा दिया और साथ ही नर्मी से क्षमा भी माँगी कि

14 Timsal Masood_Layout 1 22-02-2024 15:58 Page 393

मौजूदा हालात में इस उच्च श्रेणी क़सीदे का उचित इनाम देने के क़ाबिल नहीं हूँ। इस क़सीदे में 'फ़ुरक़ानी' ने उस ज़माने को याद किया है जब शायर और साहित्यकार अपने बादशाह यानी वाजिद अली शाह की सरपरस्ती में इत्मीनान की ज़िंदगी बसर करते थे।

मुंशी ज़हीरुद्दीन बिलग्रामी ने एक फ़ारसी कविता *सिराते मुस्तक़ीम* वाजिद अली शाह की ख़िदमत में कलकत्ते भेजी। बादशाह ने उसका फ़ारसी भाषा में लंबा जवाब लिख कर भेजा था। बादशाह के इस फ़ारसी लेख को ज़हीरुद्दीन बिलग्रामी ने अपनी किताबों *ज़हीरुल इंशा* और *असरारे वाजिदी* में नक़ल किया है। ज़हीरुद्दीन बिलग्रामी की कविता में कुछ संख्याएँ आई हैं। बादशाह ने हर अंक की मुनासिबत से रुपये और अशरफ़ियाँ भी ज़हीरुद्दीन बिलग्रामी को भेजी थीं।

शिव प्रधान महाराजा जय गोपाल सिंह बहादुर 'साक़िब' बादशाह की तारीफ़ में फ़ारसी कविताएँ कह कर बादशाह के दरबार में पेश किया करते थे जिसके सिले में वह बादशाह से इनाम पाते थे। बादशाह के हुक़्म से महाराजा जय गोपाल ने इन कविताओं को जमा करके एक किताब तैयार की और उसका नाम *नादिरातुस्साक़िब* रखा था।

बादशाह के क़िले से छूटने और 1857 के फ़साद के ख़त्म होने के बाद लखनऊ से और भी शायर कलकत्ता पहुँचे और वाजिद अली शाह से मुनसलिक हुए। बादशाह की आदत थी जहाँ शायर हाज़िर हुए बातों-बातों में कोई मिसरा ख़ुद ही नज़्म कर दिया कि इस पर मिसरे लगाए जाएँ। किसी शायर का कोई मिसरा या शेर पसंद आ गया तो कहा कि इस पर और शेर कहे जाएँ। महताबुद्दौला ने एक मौक़े पर यह शेर पढ़े :

न है इस तरह संगे आसिया ऐ चर्ख़ गर्दिश में
न है यूँ साग़रे बादा सदा ऐ चर्ख़ गर्दिश में
न यूँ तस्बीहे दस्ते पारसा ऐ चर्ख़ गर्दिश में
रहेगा नज़्मे अख़्तर ता कुजा ऐ चर्ख़ गर्दिश में

बादशाह ने इन शेरों को बहुत पसंद किया और फ़रमाया कि क़ाफ़िए बदल-बदल कर और मिसरे लगाओ।

वाजिद अली शाह की कई बेगमें भी शायरी करती थीं और बादशाह उनका बड़ा हौसला भी बढ़ाते थे। बादशाह महल साहिबा जिनका तख़ल्लुस 'आलम' था, उनके चार शेर देखिए :

ये हाल इश्क़ में किस के हुआ कहो तो सही
हिलाल क्यों हुए ऐ महलक़ा कहो तो सही
न वो मिज़ाज, न वो चहचहे, न वो हंसियाँ
उदास रहने का बायस है क्या कहो तो सही

14 Timsal Masood_Layout 1 22-02-2024 15:58 Page 394

अबस अबस न क़सम खाओ कल के आने की
किया है कौन सा वादा वफ़ा कहो तो सही
तुम्हारा दिल तो न 'आलम' असीरे गेसू था
ये किस तरह से हुआ मुब्तिला कहो तो सही

बेगम साहिबा ने यह ग़ज़ल कही और ख़ुद उसकी धुन रखी। उस ग़ज़ल का ऐसा रंग बँधा कि अक्सर लोगों ने इस ज़मीन में ग़ज़लें कहीं। बादशाह की दूसरी बेगम नवाब महबूब आलम साहिबा ने भी इस पर मिसरे लगाए हैं :

यकायक आई कहाँ से बला कहो तो सही
ये क्यों उतर गया मुँह चाँद सा कहो तो सही
हुई है काहिशों की वजह क्या कहो तो सही
ये हाल इश्क़ में किस के हुआ कहो तो सही
हिलाल क्यों हुए ऐ महलक़ा कहो तो सही
हैं याद तुम को दग़ा बाज़ियाँ ज़माने की
हमेशा से यूँ ही आदत है क़समें खाने की
फ़क़त ये घात है पहलू से उठ के जाने की
अबस अबस न क़सम खाओ कल के आने की
किया है कौन सा वादा वफ़ा कहो तो सही

सादिक़ अली 'मायल' ने बादशाह के पास अपनी ग़ज़ल इस्लाह के लिए भेजी। बादशाह ने एक आध लफ़्ज़ बना दिया और कई शेर उनकी तारीफ़ में भी लिखे, उनमें का पहला शेर है :

ऐ शायरे नौ सुख़न ख़ुदारा
अंदाज़े सुख़न ने तेरे मारा

बादशाह ने 'मायल' के एक शेर को बहुत पसंद किया और कई बार पढ़वाया :

तसव्वुर था जो रोने में गुलूए यारे महरू का
सुराही-दार मोती बन गया हर क़तरा आँसू का

14 Timsal Masood_Layout 1 22-02-2024 15:58 Page 395

वाजिद अली शाह के चंद शेर

अँधेरा बज़्म में था तू जो अंजुमन में न था
चमन उदास था ऐ गुल जो तू चमन में न था

ग़ुँचए दिल खिले जो चाहो तुम
गुलशने दहर में सबा हो तुम

तिरी याद का दिल में वो जोश है
ग़मे दीन ओ दुनिया फ़रामोश है

सोज़े दिल जब गुज़ार करता है
बर्क़ को बेक़रार करता है

इश्क़ से कुछ काम ने कुछ कुए जानाँ से ग़रज़
गुल से मतलब है न कुछ ख़ारे बियाबाँ से ग़रज़

आलमे वहशत में उरयानी का जामा चाहिए
काम हाथों को गरेबाँ से न दामाँ से ग़रज़

वादे प शब को आया दिलबर ध्यान लगा है और कहीं
महर हमारे दिल में है तालए नूरो ज़िया है और कहीं

गुँचे खिलते हैं ऐ गुले ख़ंदाँ
बाग़ में तेरे मुस्कुराने से

कौन से साक़ी की चश्मे मस्त का ध्यान आ गया
बज़्मे मय में हो गए बेज़ार जामे जम से हम

गर बराए सैर आएंगे कभी गुलज़ार में
देख लेना ग़ुँचा ओ गुल को हँसाते जाएँगे

न जला ख़ानए सैय्याद न गुल मुरझाए
अब न कुछ होगा इन आहों का असर देख लिया

लाला रूओं का है दीवाना अबस ए दिले ज़ार
कौन से गुल से तुझे बूए वफ़ा आती है

तुम मेहरबान थे तो सभी मेहरबान थे
तुम क्या ख़फ़ा हुए कि ज़माना ख़फ़ा हुआ

दस्ते सर्राफ़ है जो शख़्स रखे ज़र को अज़ीज़
हाथ की तरह से देखा दिले ज़रदारे स्याह
एक दिन ज़ुल्फ़े मुसलसल तिरी देखी थी परी
तब से आते हैं नज़र ख़्वाबे परेशाँ क्या क्या

दाग़ों के गुल खिलाए हैं 'अख़्तर' हज़ारहा
क़ाबिल है सैरे हुसन के ये लालाज़ारे दिल

न तुम सा हँसने वाला है न हम सा रोने वाला है
हमीं तुम बाग़े आलम में तो हैं जाने गुल ओ शबनम

न वो गेसू में बसिया है न रुख़ में वो नूर
रंग क्या क्या नहीं इस शाम ओ सहर के बदले

ज़र्रे जो चमका करते हैं ख़ुर्शीद की तरह
सदहा हुए हैं साहिबे हुस्नो जमाल ख़ाक

नाक़ूसे बरहमन से सदाए अज़ाँ सुनी
मस्जिद से मैं ने क़सद किया सोमनात का

फूल खिलते हैं मगर बूए वफ़ा देते नहीं
जिन को गुल समझे थे गुलशन में वही सब ख़ार हैं

किस से हम झगड़ें नहीं अपना किसी मिल्लत से मेल
इश्क़ के बंदे को क्या गब्र ओ मुसलमाँ से ग़रज़

वाजिद अली शाह का पुस्तकालय

वाजिद अली शाह अच्छी किताबों के क़द्रदान थे उनके समय में लखनऊ के शाही पुस्तकालय में दो लाख किताबें मौजूद थीं मगर बादशाह को और किताबों की ख़्वाहिश थी। अपने बादशाह बनने के पहले ही साल यानी 1846 में उन्होंने यह इश्तिहार प्रकाशित किया :

> किताबों की विस्तृत सूची में से हर किताब जो इस महीने मतबए सुल्तानी के प्रभारी मुहम्मद हुसैन के मकान पर तकिया शाह फ़सीह में पहुँचेगी उस की क़ीमत बेचने वाले की मर्ज़ी की उसी वक़्त दे दी जाएगी।

14 Timsal Masood_Layout 1 22-02-2024 15:58 Page 397

इस सूची में विभिन्न विषयों की ढाई सौ किताबों के नाम हैं जिस में अक्सर दुर्लभ और कमयाब पुस्तकें हैं। इनमें इतिहास की किताबों की संख्या सबसे ज़्यादा है। यह पूरी सूची मसूद हसन रिज़वी के एक लेख 'लखनऊ का शाही कुतुबख़ाना' में शामिल है। यह लेख 1970 के अगस्त में *नया दौर* पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। वाजिद अली शाह का पुस्तकालय 1857 के ग़दर की लूटमार में भी तबाह हुआ। मुंशी ज़हीरुद्दीन बिलग्रामी ने बादशाह की जीवनी लिखने के लिए जब उनकी किताबें माँगी थीं तो बादशाह ने जवाब में लिखा था (फ़ारसी से तर्जुमा) :

> उम्दा किताबों को बाग़ियों की लूट के सैलाब ने इस तरह डुबो दिया कि अब उनके एक अक्षर का निशान भी बाक़ी नहीं है (ज़हीरुलइंशा)।

1857 के ग़दर में लखनऊ के रईसों और नवाबों को अंग्रेज़ी फ़ौज में भर्ती हिंदुस्तानी सिपाहियों ने बहुत बेदर्दी से लूटा था। चूँकि उस ज़माने में किताबें भी क़ीमती सरमाए में शुमार होती थीं इसलिए ग़दर की लूट में दूसरे क़ीमती सामान के साथ किताबें भी लूटी गईं। मिसाल के तौर पर एक महल के लूटने में वाजिद अली शाह की मसनवी *इश्क़नामा* एक सिपाही के हाथ लगी जिसको उसने अपने अंग्रेज़ अफ़सर के हवाले कर दिया और वहाँ से यह अत्यंत सुंदर किताब लंदन पहुँची। इश्क़नामा आज भी लंदन के रॉयल क्लेक्शन ट्रस्ट में मौजूद है।

अवध के विभिन्न पुस्तकालयों में अरबी और फ़ारसी किताबों की सूची बनाने के लिए अलोयस स्प्रेनज़र 3 मार्च 1848 से 1 जनवरी 1850 तक लखनऊ में रहे। उन्होंने क़रीब 10 हज़ार किताबें देखीं और उनकी सूची तैयार की। यह सूची 4 खंडों में थी। जिस में से सिर्फ़ एक खंड प्रकाशित हुआ। बाक़ी तीन खंडों का पता नहीं।

वाजिद अली शाह ने अपनी मटियाबुर्ज की सल्तनत में एक पुस्तकालय भी क़ायम कर लिया था। यह पुस्तकालय बादशाह के ख़ास महल में था जिसका नाम सुल्तानख़ाना था। बादशाह अधिकतर इसी महल में रहते थे। शाही पुस्तकालय में 25-30 अलमारियाँ किताबों की थीं। बादशाह के देहांत (1887) के बाद अंग्रेज़ पूरा पुस्तकालय गाड़ियों पर लदवा कर ले गए। मालूम नहीं कि वह किताबें क्या हुईं।